सुमित्रा कुमारी सिन्हा

प्रकाशक
आचार्य गजेन्द्रशंकर
युग-मन्दिर
उन्नाव

मूल्य १॥।)
शिवरात्रि संवत् १९९२

मुद्रक
पं० भृगुराज भार्गव
भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स, लखनऊ

क्रम

संख्या	प्रथम पंक्ति	पृष्ठ
१५	—वह नूतन वर्ष मनाते हैं	३१
१६	—क्या कहते हो सावन आया	३३
१७	—भूल गए पथ मेघ सुहावन	३६
१८	—क्यों पूछ रहे हो मेरा पथ	३८
१९	—बोलो यह कैसी छलना	३९
२०	—जी करता है आज भुला दूँ	४०
२१	—भाग रहे हैं जीवन के क्षण	४३
२२	—रात शेष है ख़ूब महक लो रजनीगंधा	४४
२३	—मैंने पूर्ण अभाव विश्व का	४७
२४	—उत्सव है प्रकृति-वधू घर	५०
२५	—बोलो क्यों आँसू भर आये	५४
२६	—पल भर ही दुलराया होता	५६
२७	—आज भोर महुओं को मैंने	५८
२८	—केवल एक तुम्हीं को जाना	६१
२९	—हाट सपनों की लुटी यों	६२
३०	—आज मिलीं फिर खोई आँखें	६३
३१	—पूजा को तो फूल नहीं है	६४
३२	—मुझे एक मुस्कान पिला दो	६५
३३	—आज कहीं कुछ छोड़ चली मैं	६६
३४	—नाव के इन बन्धनों को खोल माँझी	६७
३५	—तुमने भी जाना होगा घर घर दीवाली आई	६९

दो शब्द

श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा की कविताओं में, मुझे युग की आवश्यकताओं का क्रन्दन सुनाई पड़ता है। ऐसा जान पड़ता है, जैसे अटूट अतृप्ति का कोष लिये वे निगूढ़ अंधकार में कुछ ढूँढ़ती सी जा रही हैं। एक उन्मुक्त आशा के साथ उनकी वाणी का पथ-संचालन होता है। मीरा ने विश्व की सीमाओं को लाँघकर जो कुछ कहा है, सुमित्राजी मानों जीवन की अतृप्ति की उस वाणी को जगत् की छाती पर दुहराकर देखना चाहती हैं। मीरा अपनी बात कहते समय, 'गिरिधर गोपाल' को साक्षी बनाती थी, सुमित्रा अपने 'साथी', 'बटोही', 'तुम' आदि शब्दों द्वारा बन्दनवार सजाती हैं और पूजा करती हैं। मीरा का साम्य मैं नहीं देख रहा। मुझे मीरा का नाम याद आ रहा है।

कवि की वाणी में एक सचाई होती है। वह जिसके प्रति व्यक्त की जाती है, वह हृदय-मन्दिर में, अथवा दृष्टि के भूलों पर दिखाई देता है।

हिन्दी में, जिन देवियों ने काव्य लिखकर गौरव पाया है, उनमें से प्रायः प्रत्येक ने, ईमानदारी से, पुरुष लेखकों की तरह, अनेक रूपों में अपने को नटा सजाकर अपनी सूझों की नाट्यशाला उपस्थित नहीं की। उन्होंने अप्रासंगिक विपरीत रसों और ध्वनियों के अनुभवहीन स्वामी होने की घोषणा की। सच पूछिये तो कितने ही पुरुष कवि ऐसा लिखते हैं कि, उनकी कविता पढ़-सुनकर, यह जानना कठिन होता है कि आखिर कवि है कौन ? जिस तरह, 'संसार-सागर' से पार जाने के लिये, वैष्णवों को जीवन में नाम का ही सहारा होता है, उसी तरह कविताओं में वाच्य पहिचानने के लिए कहीं-कहीं काव्य-भक्तों को, कविताओं पर छपे 'नाम' का ही सहारा रह गया है। हम जिस (Intermediate sex) के व्यक्ति को व्यक्त कर रहे हैं, प्रभु जाने, वह 'किन्नर' कभी विश्व में पैदा भी होगा या नहीं ? शायद केवल हमारी कविता ही में लिखा रह जायगा।

सुमित्राजी के ये सपने, सूझहीन खिलवाड़मात्र नहीं हैं। उनके पीछे, एक बात है। यह सच है कि बात, सतह की एक ही रागिनी पर है—रस का कोई पर्दा बदला नहीं है। मुझे हर्ष होगा यदि कभी सुमित्राजी को उनका साथी सूझों की उच्चता के मन्दिर में हृदयदान करते-करते, शिरदान करता हुआ भी दीख पड़ेगा।

समाज का भय, राजा का कोप, परिवार की नाराज़ी, विधान की प्रखरता, और व्यक्तिगत जाँच-पड़ताल—इन अनेक छलनाओं में छानी जाने के बाद, कवि की कहन, कहन ही नहीं रह जाती, वह प्राण बचाकर खाई हुई भावनात्मक कुलाँटो का एक अद्भुत कौशल हो जाता है। अपनी एक दिशा चुन लेने के बाद, सुमित्राजी ने इस छलना से बचने का प्रयत्न किया है।

सुमित्राजी ने, एक अटूट खोजमयी चाह पाई है। मुझे आशा है, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान की तरह, सुमित्राजी का मातृत्व भी जाग्रत होगा, और वे बचपन को गा उठेंगी।

मनोभावनाओं के नये क़दम पुरुष लेखक के लिए प्रतिभा के खिलवाड़मात्र हैं, किन्तु लेखिका के लिये, प्रतिभा और साहस दोनों का संयुक्त-स्वरूप हैं। इस सम्बन्ध में, सुमित्राजी ने, अपने को अपने साहित्य में काफ़ी निःशंक सिद्ध किया है।

युग की वाचा भी, सुमित्राजी की पंक्तियों में फूटी है, किन्तु वह बलवती नहीं हो पाई। खेतों, खलिहानों, कारखानों, और सड़कों के ग़रीबों के भी प्रेम होता है, कलेजा होता है, जी होता है, चाह होती है, और मस्ती होती है। जब हमारा साहित्य शहराती से ग्रामीण—जन-साहित्य—होने की ओर झुकेगा, तब मुझे आशा है, युग की घटनाएँ, कवि की वाणियों

में जाग्रत हुए बिना न रहेंगी। किन्तु वे वाणियाँ राजनैतिक प्रचार, देशभक्तों में नाम लिखाने की दरख्वास्त, और शहीदों से होड़ लेने का तमाशा न हों। वे वाणियाँ हों जिनमें युग की साँसों से क़ह-क़हाता और कराहता स्वर, अपनी स्वाभाविक सरलता और गौरवशीलता को लेकर, अपनी खोज, नवीनता और प्रतिभामयता में, विश्व की हाट में उच्चत्व की होड़ लेती हुई सूझों के साथ, सुनाई पड़ता रहे। गद्य को तुकों में या तुकहीनता में गा देना, और पद्य को 'सजा-नटा' कर लोगों को नजरबन्दी दिखा देना—काव्य का यह युग समाप्त हो गया। उतरे हुए युग को अधिक दिनों तक रोक-कर, हमने लोक रुचि और अपनी क़लम दोनों में दुर्गंधि ला दी है। वह सुरुचि, तेजस्विता, और आनन्द के स्वास्थ्य को हानि पहुँचा रही है। सुमित्राजी उन यत्नशीलों में हैं जो इस युग को बदलना चाहते हैं।

—माखनलाल चतुर्वेदी

मेरे भोर साँझ मत होना ।

अभी रेशमी पंखड़ियों पर अंकित हिम के मोती-चुम्बन
शेफाली के यौवन-धन का अभी न पूरा हुआ समर्पण ।
नींद-भरी अलसाई पलकों पर के स्वप्न अभी मत धोना ।
मेरे भोर, साँझ मत होना ।

छूटे नयन-बाण किरनों के कलियों में गुदगुदी भरी है ।
मधु-सुगन्ध की लहर समेटे पतली मृदु समीर उतरी है ।
पक्षी के नन्हे कंठों से झरा मुक्त संगीत सलोना ।
मेरे भोर, साँझ मत होना ।

सुरधनु के सातों रँग चमके, विश्व रँग गया शत रागों में ।
जीवन की हलचल ने बाँधा अखिल सृष्टि को शत धागों में ।
फूलों के मरकत-वसनों पर राशि राशि बिखरा है सोना ।
मेरे भोर, साँझ मत होना ।

भागी भीड़ अभी मन्दिर में पूजा की पावन बेला है।
ठंडे राजमार्ग पर उमड़ा अभी यात्रियों का मेला है।
गूँजा है मधुमय वंशी से अभी विश्व का कोना कोना।
मेरे भोर, साँझ मत होना।

केशर-रेणु गुलाब-महावर, ऊषा से कुंकुम भर लाई।
मधु-मरन्द पी पुलक पुलक कर मैं प्रिय की गा रही बधाई।
इन उमंग के मधुर क्षणों में जो कुछ पाया उसे न खोना।
मेरे भोर, साँझ मत होना।

हिल्लोलित वल्लरियों सी नत झूम झूम मैं बलि जाऊँगी।
प्रिय-स्वागत में गीतों के यह बन्दनवार सजा लाऊँगी।
प्रात-अधर से हास फूटता, सन्ध्या की पलकों से रोना।
मेरे भोर, साँझ मत होना।

मैं तुम्हारी गति सदा हूँ, जानते हो!

जब अमंगल की घड़ी आवे कठिनतम,
पंथ रुक जावे, खड़े हों विघ्न दुर्दम,
चाँद सूरज सब बुझें, जब मेघ टूटें,
घन अँधेरा अवनि का शृंगार लूटे,
दिग दिगन्तों में प्रलय बन डोलती हो,
विकल झंझा बाँध अपने खोलती हो,

पथ-गमन-अनुमति सदा हूँ, जानते हो!
मैं तुम्हारी गति सदा, तुम जानते हो!

लुब्ध पतझर आ रहा हो भुज पसारे,
जब कुसुम-कलियाँ उमँग हँसना बिसारें,
व्याप्त चारों ओर हो कटुता तुम्हारे,
मन बहलने के उपक्रम मुँह निहारें,
डूब जावें आँसुओं से दृग-किनारे,
टूटते से जब लगें, आशा-कगारे,

धैर्य्य की मैं यति सदा हूँ, जानते हो !
मै तुम्हारी गति सदा, तुम जानते हो !

तुम चढ़ो हिम-गिरि-शिखर पर हँस उछलकर ,
तुम बढ़ो तूफ़ान में इठला मचलकर ,
तुम उठो आकाश-तारे चूम आओ ,
सिन्धु-लहरों पर थिरक तुम झूम जाओ ,
मुक्त पंखों पर पवन के तिर चलो तुम ,
अचिर क्षण पर अडिग पग धर स्थिर चलो तुम,

साधना-परिणति सदा हूँ, जानते हो !
मैं तुम्हारी गति सदा हूँ, जानते हो !

चले जा रहे होगे तुम,
ओ दूर देश के वासी।
चली रात भी, चले मेघ भी,
चलने के अभ्यासी।

भरा असाढ़, घटायें काली
नभ में लटकी होंगी;
चले जा रहे होगे तुम
कुछ स्मृतियाँ अटकी होंगी।

छोड़ उसाँस बैठ गाडी में
दूर निहारा होगा,
जब कि किसी अनजान
दिशा ने तुम्हे पुकारा होगा।

हहराती गाड़ी के डिब्बे
में बिजली के नीचे,
खोल पृष्ठ पोथी के
तुमने होंगे निज दृग मींचे।

मर सर सर पुरवैया
लहकी होगी सुधि मँडराई,
तभी बादलों ने छींटे
दे होगी तपन बढ़ाई।

चले जा रहे होगे तुम,
ओ दूर देश के वासी।
चली रात भी, चले मेघ भी,
चलने के अभ्यासी।

रात खोल घन अलक जाल
काजल आँजे मदमाती,
पागल सपनों की बाँहों में
होगी तुम्हें सुलाती।

दौड़ रही होंगी वृक्षों की
पाँतें साथ तुम्हारे,
चमकीले मुँह के जुगनू
औ' झिल्ली की झनकारें।

बीच वनों के कहीं पपीहे
हूक भर रहे होंगे;
ठिठके ताल तलैया-तट
कुछ मूक कह रहे होंगे।

अँधियारे में पड़ी चेतना-
शून्य स्तब्धता होगी,
किन्तु तुम्हारे भीतर घन-
गरजन की गुरुता होगी।

चले जा रहे होगे तुम,
ओ दूर देश के वासी।
चली रात भी, चले मेघ भी,
चलने के अभ्यासी।

खिड़की में मुँह डाल
सोचते होगे तुम यों उन्मन—
'कितनी तृष्णा से पूरित है
मानव का नन्हा मन।'

गाड़ी के हलके हिलकोरों
से तन डूबा होगा।
भरी भीड़ में एकाकीपन
से मन ऊबा होगा।

धमक उठे होंगे सहसा
मेघों के डमरू काले।
विकल मरोर उठे होंगे
तब धने भाव मतवाले।

दामिनि झमक उठी होगी
अम्बर की श्याम-अटा पर ;
युगल नयन भी नीरव बरसे
होंगे उसी घटा भर।

चले जा रहे होंगे तुम,
ओ दूर देश के वासी।
चली रात भी, चले मेघ भी,
चलने के अभ्यासी।

दूर देश की बिछुड़न
बनती होगी सजल कहानी।
कभी मिलन बन गईं
न जाने क्यों राहें अनजानी।

रैन बसेरा पल भर का फिर
चल ही दिये, बटोही!
भोली कलियों को काँटों की
ओट किये, निर्मोही!

जगा न भोर, न कलियाँ विहँसी,
मृदुल समीर न डोली।
गीत दिये सो भी अपूर्ण,
भर सकी न निर्धन झोली।

पहर रात के पाहुन, रूठी
नींद न फिर आ पाती।
फिर न रुकें उच्छ्वास सदा
बदली ही घिर घिर आती।

चले जा रहे होगे तुम,
ओ दूर देश के वासी।
चली रात भी, चले मेघ भी,
चलने के अभ्यासी।

चलो, न रोकूँ; साथ तुम्हारे
विकल-भावना मेरी।
चलो, न टोकूँ; साथ तुम्हारे
विजय-कामना मेरी।

चलते रहो सचेत, बटोही,
कभी मिलेगी मंज़िल।
मिल लेंगे हम ज्यों झोंके
से लहराती मलयानिल।

बदले जीवन-चक्र दिशा गति
मुक्त मार्ग-अनुगामी।
किन्तु खिलाये रखना तबतक
सपने कुछ आगामी।

मधुर नेह रस के सागर
से रीत न जावें आँखें,
घिर न रहें पथ की
सीमाओं में आशा की पाँखें।

चले जा रहे होगे तुम,
ओ दूर देश के वासी।
चली रात भी, चले मेघ भी,
चलने के अभ्यासी।

∵

मैंने बन्दनवार सजाए।

मानव मानव का आमन्त्रण,
आज हो रहा नव अभिनन्दन,
विश्वप्राण, गुंजित करने को मन्दिर ने जयशंख बजाए।

उत्पीड़न के द्वार तोड़कर,
बलिदानों का पन्थ मोड़कर,
आज मुक्त मानव ने नवयुग जाग्रति के शुभ पर्व मनाए।

युग-भावना लिये तुम आओ,
विजय-ध्वजा आकर फहराओ,
शिथिल शक्ति की शिरा शिरा में गीत स्फूर्ति का उठ लहराए।

दिवालोक से हँस खिलकर हम
नाश करेंगे दुःख गहन-तम,
दिशा-दिशा के गले मिल चलें पग-पग पर मधुमास खिलाए।

मैंने बन्दनवार सजाए।

कैसे हो विश्वास कि साथी, तूफ़ानों में डोल सकोगे ?

सुप्त हुये निद्रा में गहरी
अम्बर के भी जाग्रत प्रहरी।
दिग दिगन्त में झंझा घहरी,
हहर उठी सागर की लहरी।
महा प्रलय का आमंत्रण पा आज प्रणय-जय बोल सकोगे ?

छोड़ दिया आशा का मधुवन ;
तोड़ दिया अभिलाषा का मन ;
आज घिरा काला दुर्दिन ;
सुन पाऊँ क्या मंगल पगध्वनि ?
तट से बँधी हुई तरणी को प्रलय-ज्वार में खोल सकोगे ?

घुमड़ रही प्रतिपल जो वाणी,
इति कर दो वह आज कहानी।
चिता बना दो पीर पुरानी,
रह न भस्म भी जाय निशानी।
मंज़िल थोड़ी दूर रह गई क्या प्राणों का मोल करोगे ?

तुम क्यों हो मौन, अवश बन्दी ?

कारा के अन्ध हृदय में तुम,
उत्पीड़न के संचय में तुम,
थपकी कठोर बन्धन की पाकर क्यों हो मौन, अलस, बन्दी ?

देखो तो आया है ऋतुपति,
चरणों में भर नव नर्तित गति,
जड़-वल्लरियों की भी हँसने खिलने की आज वयस-बन्दी !

निर्मुक्त व्योम है, मुक्त धरा,
उन्मुक्त सरित में हास भरा,
आलोक-किरण भी मुक्त, बँधे तुम क्यों हो मौन, अवश बन्दी ?

जीवन को कब प्रिय जड़ता है ?
तूफ़ान मौन कब पड़ता है ?
हो सजग कारवाँ जाता है, ये तन्द्रा के न दिवस, बन्दी !

तुम क्यों हो मौन, अवश बन्दी ?

ओ पुजारी, आरती की
शिखा को प्रज्वलित मत कर।

बन गई अभिशप्त पूजित
है यहाँ पाषाण-प्रतिमा;
कालिमा में रात की लय
हो गई प्रातः अरुणिमा;
शलभ की अभ्यर्थना
होती यहाँ पर भस्म ढेरी;
याचना की तरस तूने
क्यों यहाँ आकर बिखेरी?

ओ भिखारी, दान पाना कठिन,
फैला मत युगल कर।

प्रणय-बन्धन माप तेरा
गगन का मन भी लजाया;
प्राण लघु ले, स्वप्न निर्धन
शून्य अपना क्यों सजाया?

साध छलकाते दृगो की,—
बादलों से होड़ कैसी ?
चिर पथिक तू, रुद्ध दिशि की
ओर पथ की मोड़ कैसी ?

बल कहाँ जो दे सके मरु
मधुर शीतल स्पर्श सुखकर।

तप्त तृष्णा-रेणु में खो
जलन का वरदान आँका ?
क्या तपी जीवन-जड़ों को
सींचने रस-प्राण झाँका ?
क्षार-सागर में दृगों के
क्यों बसे मधु-गान तेरे ?
सो गये किस अंधनिशि में
मृत्यु के आह्वान तेरे ?

स्तब्ध मंदिर साधना का,
मौन पट को बन्द मत कर।

यह ऋतु भी अब चल दी, साथी !

शान्त हो गया मेघों का मन,
मौन पड़ा बूँदों का गायन,
देने मधुर गुदगुदी किरणें
आईं आज फिसलती, साथी।
यह ऋतु भी अब चल दी, साथी।

सर में सरसिज अब फूलेंगे,
उनमें अलि के मन झूलेंगे;
घूँघट डाले शीत गुलाबी,
मीठी अनिल मचलती, साथी।
यह ऋतु भी अब चल दी, साथी।

चटक खिलेगा अब धूमिल दिन,
हँस देगी मधु-ज्योत्स्ना-यामिनि;
स्फूर्ति-लहर दौड़ेगी मानव-
मन में कोलाहल की, साथी।
यह ऋतु भी अब चल दी, साथी।

बीते अब तो मेरी मावस,
रीते झर-झर कर यह पावस;
अब तो पल भर के स्थिर जल में
विकसे मिलनोत्पल भी, साथी।
यह ऋतु भी अब चल दी, साथी।

•••

जब हम विलग हो गये थे
उस पथ से उस दिन,
एक ध्वजा के दो रूपों से
हम फहरे थे।
आगे बढ़ी चरण-गति,
पीछे मन सिहरे थे।

ओझल हुये दृगों से
आँसू ने पट डाले,
दृश्यों ने अतीत की
सुधि के दीपक बाले।
बिखर गये हम नभ के
फूलों से गिर भू पर।
लुटे पलक-वृन्तों से कुसुमित
सपने चू कर।

विदा हर्ष को दे लौटी थी,
व्यथा नीड़ को।
मौन वेणु में क्रूर समय ने
दिया मीड़ को।
एक मूर्च्छना ने दे दी
झंकारें अनगिन।
जब हम विलग हो गये थे
उस पथ से उस दिन।

दूर देश में रहते अब तो
रहना सीखा।
मन पर सब कुछ सहते सहते
सहना सीखा।
इस धारा में बहते बहते
बहना सीखा।
गीतों में कुछ रोते गाते
कहना सीखा।
तट पर नहीं सिन्धु में अब तो
नौका डाली।
शून्य मुखर करने को
वीणा-तान निकाली।
लहर लहर में लोल लालसा
उठ उठ आती।

दूर कहीं पर पूर्ण इन्दु की
दीपित थाती।
सृष्टि नियम है,
निशि के बाद सदा होता दिन।
कभी मिलेंगे, विलग हुए
ज्यो पथ से उस दिन।

मेरे सपने टूट चुके हैं।

जिनमें घुल आह्लाद गया था,
पुलकाकुल उन्माद नया था,
जो प्रातः पलकों पर थे—
साकार हो गये, टूट चुके हैं।
मेरे सपने टूट चुके हैं।

आँखों के संकेत चुराये,
अन्तर के सन्देश बसाये,
बँध मन-बन्धन में भी
दूरी पर वे अपने छूट चुके हैं।
मेरे सपने टूट चुके हैं।

आग चाँदनी बन जाती थी,
वर अभिशापों की थाती थी,
आज सत्य-संघर्षण से वे
छलना के घट फूट चुके हैं।
मेरे सपने टूट चुके हैं।

वंशी मे अब तो चीत्कारें,
स्वर में टूटी सी मनुहारें।
क्रन्दन-प्रलय सृष्टि मधु गानो
की मेरी अब लूट चुके हैं।
मेरे सपने टूट चुके हैं।

इसी तरह हो मंज़िल पूरी।

कहीं राह में मिल ही लेंगे,
मौन समर्पण कर ही देंगे,
छल न सकेगी अब हमको यह
अम्बर के तारों सी दूरी।

प्राणों में स्पन्दन भर भर कर,
लहरों में कम्पन भर भर कर,
कहते चलो कथा तुम, साथी,
हो चाहे यह भले अधूरी।

रुक भी जावें चलते चलते,
बह भी जावें गलते गलते,
किन्तु न यह क्रम टूटे, साथी,
इसी तरह हो मंज़िल पूरी।

पाथेय मिला पथ पार करूँ ।

निकला है सूर्य बादलों से ,
निकला सौरभ कलिका दल से ,
हो गई सरित अल्हड़ चंचल
अविचल गिरि के वक्षस्थल से ,

मिल गया प्रवाह जलधि से अब
मैं भी सीमा विस्तार करूँ ।

खुल हँसे पंक से ऊपर उठ
सरसिज लहराए झूम झूम ,
पलकों की नीहारिका त्वरित
ढुल गई, कमलदल चूम चूम ,

उठते गिरते पल पलकों में ,
स्वप्नोज्ज्वल चिर अभिसार भरूँ ।

पाथेय मिला पथ पार करूँ ।

सपनों पर विश्वास नहीं अब।

बेहोशी के पल में आते,
पलकों में तुम घुल मिल जाते,
स्तब्ध गगन मे नीरव तारे
जैसे चुपके से उग आते।

किन्तु यही व्यापार नित्य का
देता है उल्लास नहीं अब।
सपनों पर विश्वास नहीं अब।

सत्य करो पल भर को सपना,
तोड़ो दुख की माला जपना,
कौन रहा है जग में चिर दिन,
व्यर्थ सिसकना व्यर्थ कलपना।

आँसू के जलनिधि में तिरने
का करना अभ्यास नहीं अब।
सपनों पर विश्वास नहीं अब।

विश्व साथ है, एकाकी क्यों ?
निशा उषा में छिप जाती ज्यों,
जीवन-मन की पराजयों को
नित्य विजय से ढाँक रखो त्यों।

रह जाएगा पथ के काँटों का
पथ में ही वास नहीं अब।
सपनों पर विश्वास नहीं अब।

फिर वासन्ती ऋतु आई !
लो दूर नगर से गाँवों में
फिर निखर उठी तरुणाई !

खेतों में अरहर फूली,
सुकुमार लताएँ झूलीं,
लेकर सोने की तूली
वह प्रकृति वधू भी भूली,

ऊसर के ठिठुरे ठूँठों में भी
हरियाली लहराई।
फिर वासन्ती ऋतु आई ॥

सोने के मुकुट सजाये
सरसों झुक झूम लजाये,
फागुन ने वेणु बजाये,
रग रग में गीत गुँजाये,

लालसा बनी पागल आँधी
सारी चेतना भुलाई।
फिर वासन्ती ऋतु आई॥

सुरभित बयार फिर डोली,
मदमस्त कोकिला बोली,
बौरों ने आँखें खोलीं,
नाची भौंरों की टोली,

ले रंग भरी झोली, होली
तरुणों के मन मुसकाई।
फिर वासन्ती ऋतु आई॥

फिर नयी उमंगें लहकीं,
फिर मीठी चाहें चहकीं,
फिर मन की राहें महकीं,
फिर भोली साधें बहकीं,

फिर सरिता के सूखे तट को
चूमने लहर उठ धाई।
फिर वासन्ती ऋतु आई॥

आँचल भर जौ की बाली
ले कृषक बालिका काली,

आनन्द मगन मतवाली
भरती रस से मन प्याली,

फिर बौर उठी युवकों के
अन्तर की सुन्दर अमराई।
फिर वासन्ती ऋतु आई॥

घूँघट में चाँद छिपाती,
सकुचा मुसका बल खाती,
नूपुर ध्वनि पर इठलाती,
वह ग्राम-वधू मदमाती,

अपने सपने साकार किये
पनघट पर उत्सुक धाई।
फिर वासन्ती ऋतु आई॥

फिर पुण्य उदय जीवन के,
बूढ़े भूले दुख तन के,
फिर ढोल मँजीरे ठनके,
फिर राग खिले हैं मन के,

अब प्रकृति वधू के गालों पर
कलियों की लाली छाई।
फिर वासन्ती ऋतु आई॥

अब होंगे खेत सुनहले,
मन के विश्वास रुपहले,
आशा चुपके कुछ कह ले,
सन्तोष तनिक बस रह ले,

श्रम कठिन हुआ, हँसमुख
खेतों में विजय-ध्वजा फहराई।
फिर वासन्ती ऋतु आई॥

वह नूतन वर्ष मनाते हैं।

मख़मल के गद्दों के ऊपर,
रेशम के परदों के भीतर,
मुक्तालंकारों से सजकर,
नन्दन सा फूला मन लेकर,

तूफ़ान-मूर्त्ति बन जाते हैं।

रग रग में प्यालों की उमंग,
साक़ी बाला का मधुर संग,
यों बहती है यौवन-तरंग,
ले कर मदिरा का अरुण रंग,

दानवता वह उफनाते हैं।

रेसों में जेबें ख़ाली कर,
सुन्दरियों को मतवाली कर,
जीवन में नित हरियाली भर,
बस उजियाली औ' लाली भर,

सपनों के गीत सुनाते हैं।

कंकड पत्थर हैं सेज बने,
छाया को पथ के पेड़ घने,
मिट्टी से जिनके अंग सने,
जिनसे है दूर बहुत सपने,

दिन जिन्हें भार बन जाते हैं।

जो यन्त्रों में निशिदिन पलते,
जिनके उर में मरघट जलते,
जो दुख-हिम-खण्डों से गलते,
जीवित कंकालों से चलते,

क्या नूतन वर्ष मनाते है?

क्या कहते हो, सावन आया,
आज हिंडोला झूल रे।

मैं क्या जानूँ रस-मेघों का
उमडा पारावार रे,
इन्द्रधनुष की नौका पर
किरणों का समुद विहार रे।

मैं क्या जानूँ रिमझिम बूँदों
का मदमस्त मलार रे,
मलय-समीरण का तरु-
पल्लव पर कब लुटता प्यार रे।

मेरी तो आँखों मे जीवित
आज रहे शव भूल रे!

आज न पाते बेध हृदय को
मदन कुसुम के बान रे,
लहर उठाते नहीं हिया में
उन्मद पावस गान रे।

आज मुझे तो चुन चुन देना
हैं अपने वरदान रे।
पुलकों को मरघट की
ज्वाला में करना लयमान रे!

आज उफनते तम सागर में,
नाव बही प्रतिकूल रे!

आई होगी जग में छहरी
मोती की बरसात रे,
आज हमारे घर में तो
टूटे है उल्कापात रे।

देखूँ क्या धानी मंजरियों
के नव कुसुमित गात रे,
ऊपर का आवरण हमारा
लूटे झंझावात रे।

कसक रहे हैं अन्तरतम में
झाड़ी भर के शूल रे।

छूटे होंगे गन्ध भरे
दिशि दिशि कुसुमों के श्वास रे,
किन्तु न उड़ पाते घुटते है
यहाँ रुदन उच्छ्वास रे।

भरे कहीं होंगे महलों में
स्वर्ण-कलश सोल्लास रे,
आज भरी है यहाँ कण्ठ तक
कालकूट की प्यास रे।

आज यहाँ आँगन में मुरझा
रहे खिले शिशु फूल रे।

भूल गये पथ मेघ सुहावन !

रूखे घन-कुन्तल वर्षा के,
सूखा है उसका प्रिय सावन,
शून्य पड़ीं नूपुर की ध्वनियाँ,
फीका है श्यामल घन-आनन।

लुटीं नहीं मुस्कान-बिजलियाँ
आज न आतुर उड़ता यौवन !
भूल गये सावन-घन-नर्त्तन !

आज न नभ से बूँदें छहरीं,
उठी न भू पर सागर-लहरी,
आज न हहरी मन्द समीरन,
दाह-विकलता उतरी गहरी।

आज न बाँध तोड़ मेघों ने
तृप्त किया वसुधा का तन मन।
उठा न अम्बर में घन-गर्जन।

वन-हरियाली आज न झूमी,
विकल न फूलों में है लाली,
गन्ध न मँड़राई मतवाली।
चातकि ने बस पीड़ा पाली।

"आज ढहा कर कूल कगारे
बहो बहो–"एकान्त निमन्त्रण–
दे न सके घन भुवन विमोहन।

खोये से स्मृति-चिह्न धूलि के
आज न रस से तुमने आँके,
मेघों-से रोते प्राणों में
आशा के आलोक न झाँके।

चिर-तृष्णा को तृप्ति-देश में
बसा न पाया मेरा सावन।
हुआ न यौवन का अभिनन्दन!

वातायन के द्वार मुक्त कर
छलना की सीमाएँ भूलूँ,
सुलभ न होगा क्या दो दिन भी
जलधि-उमंगों में मैं भूलूँ?

यम-नियमों के बन्धन तोड़ो
आज चिरंतन आत्म-निवेदन।
पावन सावन दो निर्देशन!

क्यों पूछ रहे हो मेरा
पथ ?
मैं तो चिर अनुगामिनी बनी।

गति पर मेरी अवरोध चकित,
प्रतिदानों से प्रतिशोध थकित,
प्रति पदक्षेप है मेरा
अथ।
आशाएँ अभिमानिनी बनीं।

तृण तृण हरियाए स्वागत-हित,
तरु तरु फूले अभ्यागत-हित,
जलधारा मेरा जीवन-
रथ।
काजल-निशि चिर चाँदनी बनी।

बोलो, यह कैसी छलना ?

बिना तूलिका रंग लिये तुम चित्रांकन करते हो।
बिना एक कण, क्षण प्रतिक्षण रीती गागर भरते हो।
बिन लपटों के जल जल जीवन क्षार हुआ जाता क्यों ?
बिना बढ़ाये पैंग स्वप्न-हिंडोल हिला जाता क्यों ?

कलियों का हृदय कुचलना।

बिना झुके टहनी ऊँची है, किन्तु टूट जाने को।
बिना रुके मग का अन्धा आवेग छूट जाने को।
बिना थके चलने की लिप्सा सम्मुख मरु की ज्वाला।
बिना छके पीने की तृष्णा सम्मुख रीता प्याला।

कच्ची ऋतुओं का ढलना।

एक मिला वरदान उसे भी अभिशापों को सौंपा।
एक मिली वाणी प्रतिबन्धों पर उसको भी रोपा।
फूलों में तितली के पंखों सा अस्तित्व डुबोया।
मोती से अनमोल हास को दृग-सागर में खोया।

अन्धड़ में दीपक बलना।

जी करता है आज भुला दूँ
सपनो सा वह दर्द पुराना।

नन्हीं शिखा प्रणय की
अंजन-लहरों में कब तक बल पाये !
साँसों की ठंडी चिनगारी
करुणा में क्या आग लगाये ?
काली सघन घटा से निर्मल
मुक्त गगन-मन भी घिर आये,
चन्द्र-बिम्ब मानस-दर्पण में,
कब तक सम्भव, तिर तिर आये ?
बँधी हुई रेखा पर कब तक
मचलेगा यह प्यार उभर कर,
मरु-उत्तप्त रेणु में क्या
बरसाऊँ जलमय चितवन के शर ?

आज उतर नभचुम्बी महलों
पर से निम्न धरा पर आना।

स्वाद सुधा का भूल
गरल से होठों की सीमाएँ नापूँ।
गत अध्याय खोल जीवन के
आज न अक्षर के पट मापूँ।
व्यथा-मोतियों को साँसों के
निर्बल सूत्र कहाँ तक गूँथें ?
दृष्टिहीन दृग देख सकेंगे
कितने पंथ, कहाँ तक रूँधे।
स्वर्ण तन्तु में मधु-अतीत
की अटकी सुधियाँ क्या सुलझाऊँ।
स्वप्न-स्नात कल्पना-उजाले
में कैसे इतिहास तिराऊँ !

मिटने वालों की बस्ती में
कैसा ऊँचा महल बनाना।

क्या होगा सपनों के टूटे
पंखों पर मँडराते जीते ?
नूतनता अब जन्म ले सके,
युग बीते, उत्पीड़न बीते।
आज लेखनी भर लूँ
उनकी दुनिया से जो दर्द भरे हैं।
आज निरख लूँ उनकी छाती
अनगिन जिनके घाव हरे हैं।

बहा ले चलूँ दुख की नौका
अपने आँसू की धारों में,
सबसे ऊँचा मेरा ही स्वर
उठे विकल उन चीत्कारों में।

आज मूकता मुखरित करनी
आगत का सन्देश सुनाना।

सूख चलीं कल्पना फुहारें,
रस-बूँदें बुझ गईं धूल में;
मधु परिमल पल भर ही झर कर
छोड़ गया चिनगियाँ फूल में।
जलते बुझते जुगनू-सा क्या
भादों का त्योहार मनाऊँ?
गहन अँधेरे में कब तक यह
मिटती मिटती रेख बनाऊँ?
आज तृषित कांक्षायें छू छे
संवेदन पर लुट न सकेंगी,
सत्य-तुला पर तुलकर कैसे
छलनायें बेमोल बिकेंगी?

आज अधूरी टीसों का मैं
अस्त करूँ मदमस्त तराना।

भाग रहे हैं जीवन के क्षण !

हँसता प्रात अभी था आया,
सौरभ कलियों में न समाया,
ढुलक पड़े मधुघट,
रीती ही रही सुधा पीने को चितवन।

धधकी फिर दुपहर यौवन की,
लपट उठीं साधें तन मन की,
क्षार हो गईं लपटें बुझकर
जला न दो दिन तक भी जीवन।

संध्या के मीठे धीमे स्वर
भर न सके पीडा से अन्तर,
छिपा सकेगी निशि भी काले
आँचल में न हमारे दृग-कण।

फिर क्यों तुम ही निश्चल होकर
भूल गये चलना गति देकर,
जन्म जन्म को आज बना लो
बाँध पलों को चिर-स्थिर-नूतन !

भाग रहे हैं जीवन के क्षण !

रात शेष है ख़ूब महक लो,
रजनीगन्धा !
यौवन-पथ पर आज बहक लो,
रजनीगन्धा !
खोल चलो तुम अन्तर के स्तर
बे पहिचाने,
डोल चलो सौरभ-पंखों पर
बस अनजाने,
आज रात को मचलो, मचलो,
रजनीगन्धा !
सुरभि-स्नान कर उछलो, उछलो,
रजनीगन्धा !
बाँध चले मनचला समीरन
पुलक तुम्हारे,
रिक्त भले कर दे निशि बैरिन
अधर कगारे,
मूक उदासी की छाती पर
सौरभ-झरने

चढ़ते आवेगों को लेकर
चलीं उतरने ,
आज रात को ही बस छलको ,
रजनीगन्धा !
प्रिय की छवि लेकर ही झलको ,
रजनीगन्धा !
गन्ध लहरियाँ बहें डुबो दश
दिशि मतवाली ,
श्रान्त सुप्त जगती पर हँस-हँस
खिलना, आली !
ऊषा भले गुलाबी मुख कर
खिलना जाने ,
किरण भले ही पलकों में घुल
मिलना जाने ,
आज रात को छलना भूलो ,
रजनीगन्धा !
धूल बसाने को ही फूलो ,
रजनीगन्धा !
सोयी पलकों के पल्लव पर
प्रात जगे कल ;
चलता नव-चेतन के पथ पर
जगत लगे कल ।
एक रात ही कवि ने भी तो
सपना देखा ;

कविता में जीवन भर उसकी ,
रचता रेखा ।
रात शेष है ख़ूब सजा लो
रजनीगन्धा !
चिर-गुंजन के गीत बजा लो
रजनीगन्धा !

∵

मैंने पूर्ण अभाव विश्व का
एक तुम्हें खोकर पाया है!

पथ चलते उस दिन फूलों-सी
स्मिति पर था यह जीवन अर्पण,
किन्तु आज तो मेरा जग में
प्रिय, काँटों का मुखर निमन्त्रण!
श्वासें दो सुरभित मधुऋतु की
भूल गई हैं मुझे सुलाना,
आज मुझे तो स्वप्न-लोक के
जलते-से अंगार घुलाना।

आज विश्व-जीवन पर मेरी
पीड़ा का उर भर आया है।

काली निशि लिपटी है मुझसे
विदा हो गया प्रात तुम्हारा,
मंज़िल की दूरी पर मैंने
नन्हें पग-चिह्नों को वारा।
जग के दुख पर पल भर का सुख
आठ आठ आँसू रोया है।
जग-जीवन-मरु में तृष्णा को
आज डुबा मैंने धोया है।

आज विश्व-क्रन्दन का सागर
गीतों में न समा पाया है।

मधुर मिलन के मृदुल कल्पना-
कुसुमों की छवि की रंगीनी,
मादक सुधि की गन्ध बसी थी
उस दिन जो अणु अणु में भीनी,
आज चेतना ने मेरी तन्द्रिल
सो घड़ियों से सब छीना,
मधुर सुधा की बूँदों को
गीतों से फिर धरती ने बीना।

प्राप्ति-परिधि से दूर बसे तुम
दुखिया जग समीप पाया है।

आज हुई साकार धरणि पर
मेरे भावों की चेतनता,
मानवता ने विकसित कर दी
आज हृदय की सारी जड़ता।
एक शाप देकर कितने वर
मुझसे लिए विश्व ने हैं गिन,
झरा शिशिर जग-आँगन में है
एक दृग-किरण के चुम्बन बिन।

तुहिन अश्रु-मय निशि-अँधियाला
मूँदी कलियों पर छाया है।
छू न सकी जीवन-तट को
लहराती शीतल ज्योत्स्ना उज्ज्वल ;
किन्तु प्राण में समा गई हैं
श्वासें जाने कितनी आकुल।
स्वर्गंगा में तरी डुबो कर
वज्र शिलाओं में डोली हूँ ;
मौन समर्पण भर मलयज में
झंझा के स्वर में बोली हूँ।

आज कठिन युग धर्म हृदय-
कोमलता से आ टकराया है।

उत्सव है प्रकृति-वधू-घर, वैभव ले ऋतुपति आया।
मदिरा से भीना पुलकित उल्लास-हास है छाया।
मदमाती गूँजों में है अलि की उठती नूपुर-ध्वनि।
अग-जग को मुखरित करता मलयज का मुरली-निस्वन।
सुरधनु-काया ले आई तितली डालों पर चंचल।
गाती मदमाती कोयल झरने हँसते-से कल कल।
सरिता की लहर लहर में उठ गया पुलक का कम्पन।
अलसाई किरनें जागीं, हँस पड़ा विश्व का कण-कण।
मतवाली माधव-यामिनि का फूटा यौवन अलसित।
उमड़ी दिशि-दिशि रस-धारा मकरन्द मधुर मधु-विलसित।
कोकिल-काकली मधुर सुन कलियों ने घूँघट खोला।
किरणों के स्वर्णिम-कर ने कमलों में परिमल घोला।
लतिका-चितवन से फूटी उन्मद फूलों की धारा।
अलि के लालस सालस मन की बनती मोहक कारा।
ले मीठी श्वास सुरभि की मलयज मन्थर गति आता।
तृण तृण के उर में जीवन की लहर अबाध उठाता।

शत शत रंगों के चुम्बन-अंकित नव फूल खिले हैं।
माधवी लता की डालों से मधुकर गले मिले हैं।
झोली भर निधि ले भागा कुंजों से चोर समीरन।
खिलती कलियों पर उन्मन डोला मधुपों का गुंजन।
तरु तरु में हास जगा है फूटी पल्लव में लाली।
दिशि दिशि में लहर उठी है छाई छवि की हरियाली।
मेरी भी संज्ञा जागी तन्द्रा जा अलग पड़ी है।
जागा उल्लास हृदय में चंचल मनुहार खड़ी है।
निस्पन्द हृदय के पट से टकराती कोई प्रतिध्वनि।
युग युग का संयम पिघला है जाग पड़ा उर-कम्पन।
कलरव कर जाग पड़ी हैं मन-पंछी-नवल-उमंगें।
तिमिरावृत उर में हँसती फैलीं आलोक-तरंगें।
फूलों में खुल खुल खेलो संकेत चेतना करती।
मधु भार न यह सँभलेगा प्रेरणा नई है भरती।
जाने किन जादू-फूलों से गूँथ गई मन-डाली।
जिससे ढुलकी पड़ती है सौरभ मदिरा मतवाली।
अभिलाषाएँ जीवन की चुपके चुपके मुसकातीं।
ये लुकी छिपी-सी साधें घूँघट धीरे सरकातीं।
प्रतिपल बढ़ती ही जाती लू-लपटों-सी अभिलाषा।
प्राणों में आकुल व्याकुल-सी दुर्दमनीय पिपासा।
मधु राका-छाया नीचे मधु-गन्ध-अन्ध मदिरालस।
बेसुध विषाद-पंछी यह तज नीड़ उड़ा है सालस।
कामना-किरन फूटी है तममय वन में जीवन के।
दुख-नीरद में सुख-इच्छा चित्रित है सुरधनु बन के।

इंगित करती अभिलाषा मानस का कुसुम खिला ले।
जीवन कहता यौवन से पी ले आसव के प्याले।
मलयानिल-सी उल्लासों की लहरें उठती मन में।
कुसुमों-सी साधें खिलतीं स्वर्णिम-सुहाग भर मन में।
टूटो, तुम आज हृदय के बन्धन की निर्दय-कड़ियाँ।
रुक जाओ, आह! नयन घन की आकुल अविरल लड़ियाँ।
ओ जीवन की सीमाओ, पल भर को तो ढह जाओ।
ओ अन्तर की ज्वालाओ, ले जलन अलग बह जाओ।
पल भर को तो जीवन में नियमों की संसृति, छूटो।
तर्कों के जाल सघनतम निर्मम नीरस, अब टूटो।
पग पग पर कसने वाले जग के कठोरतम बन्धन।
पल पल पर चुभने वाली आँखों के निष्ठुर दंशन।
पद पद पर अड़नेवाले ओ शैल शृंग झुक जाओ।
क्षण क्षण पर मत धधको अब ओ दावानल, बुझ जाओ।
जाने दो प्रिय की नगरी, कोलाहल करतीं आहें।
ओ आँखों के धुँधलेपन, छोड़ो तुम प्रिय की राहें।
जग का विषमय यह जीवन पी ले पल भर आसव-कण।
शीतलता से सिंचित हो पल भर इसका तपता तन।
युग युग की सृष्टि-विनाशों में खेली हूँ जीवन भर।
अब मधु-मंगल-वरदानों की वृष्टि भला हो पल भर।
दुख के निदाघ मरु जीवन, सुख-छाँह शान्त आने दो।
सब पाप ताप जल जावें निर्मल जल लहराने दो।
पल भर विषाद की जगती को अब विराम पाने दो।
जीवन-प्रवाह की धारा को जीवन सरसाने दो।

युग-युग की असफलताओं को आज तृप्त होने दो।
वासन्ती निशि-किरणों से यह पीड़ाएँ धोने दो!
ओ जीवन के क्षण रुक जा, प्रियतम से आज मिलूँगी।
प्राणों से प्राणों का अब मैं शुभ अभिषेक करूँगी।
अज्ञात चरण-चिह्नों में प्रिय के अव्यक्त अगोचर।
युग युग के विरही जीवन को मिल जाने दो पल भर।
अब अणु अणु प्यार लुटाते, मुझको प्रिय में खोने दो।
जब जड़ चेतन सब मिलते, मुझको भी लय होने दो।

बोलो, क्यों आँसू भर आए ?

राह कठिन कँकरीली होती,
तप उठती, फिर गीली होती,

मैं तो दूर देश की साथी, पथ पर मोती कौन बिछाए ?

काजल रातों के आँचल पर,
उमडे जब नयनों के जलधर,

थाम सके क्षण भर को क्या जो सुधि का इन्द्रधनुष उग आए।

सपना था, पथ पर चमकूँगी,
संगिनि बन दिशि दिशि गमकूँगी,

किन्तु 'अकेले चलना होगा'—सत्य कठोर आज सिखलाए।

धूप छाँह-सा मिलना भी क्या,
पल भर का यह खिलना भी क्या,

पनपा करती है जब निशिदिन घोर उदासी हिय मुरझाए।

किन्तु तुम्हें तो मंज़िल पाना,
नवयुग का सन्देश सुनाना,

तुम क्यों प्रत्याशा करते हो, कोई अश्रु पोंछ दुलराए ?

बोलो, क्यो आँसू भर आए ?

पल भर ही दुलराया होता ।
आज न मेरे गीतों का जी दुख से यों भर आया होता ।

रुक जातीं ये आँसू - धारें,
चुप होतीं ये विकल पुकारें,
सपनों की तृष्णा को तुमने क्षण भर ही बहलाया होता ।

मन-पंछी उड जाता नभ पर,
करता पार सरित, गिरि, सागर,
चंचु मिला टूटी शाखा पर थकित पंख सहलाया होता ।

शून्य डगर की पथिक न होती,
दुःख-गेह की अतिथि न होती,
मेरा प्रतिपल धधकी ज्वाला से फिर यो न नहाया होता ।

जीवन की कुछ ममता होती,
सब सहने की क्षमता होती,
मेरी ऊसर-चाहो में मधुमास उतर हँस आया होता ।

द्वार द्वार की करुण याचना,
आज न होती छल-प्रवंचना,
बेबस होकर मरु में अपना खँडहर यों न बसाया होता।

पल भर यदि दुलराया होता।

⁂

आज भोर महुओं को मैंने सूने वन में चूते देखा ।

लम्बे ऊँचे सघन पेड़ की फैली दूर दूर तक बाँहें,
अमराई के एक किनारे पथ में लेटी ठंडी छाँहें।
हरी भरी टहनी की गोदी में नरमीले चिकने किसलय,
नाच रहे थे किलक रहे थे किरनों के खेलों में तन्मय।
केसर-उज्ज्वल मोती-जैसे गोल गोल मधुपूरित सुन्दर—

आज भोर महुओं को मैंने सूने वन में चूते देखा ।

पीकर महक मधुर मद भीनी शीतल पवन सिहर बल खाता,
कोने कोने में लहरा कर तरु के यश के गान लुटाता।
अनावृता अवनी अलसाई बिन शृंगार किये थी सोती,
आज चैत की मोहन-माला में इस तरु ने गूँथे मोती।
फूला फूला मन धरती पर मुक्त हृदय से कर न्योछावर—

आज भोर महुओं को मैंने सूने वन में चूते देखा ।

तरु के उल्लासों का झरना झर झर कर नीचे था आता ,
खेतों की मेड़ों तक जाकर कुछ मीठे संवाद सुनाता ।
सोने की छाया में फूलों की रस-भरी कहानी लिखकर—
मानो तरु ने अपने जीवन का पन्ना उलटा था सुन्दर ।
झूम झूमकर मदहोशी से अनगिन चुम्बन की वर्षा कर—

आज भोर महुओं को मैंने सूने वन में चूते देखा ।

उन्मद यौवन का मदिरा-घट मानो पल पल पर छलकाता ,
प्रिय-पग का प्रक्षालन करने मानों नयनाम्बुज ढुलकाता ।
कंचन-किरनों के समुद्र में वृन्त-पलक-सीपियाँ किलोलें ,
मानो तरु ने सुघर मोतियों भरे अनेक ख़ज़ाने खोले ।
विरह-व्यथा-मूर्च्छित उर्वी पर कुसुमायुध-सा बरसाता शर–

आज भोर महुओ को मैंने सूने वन में चूते देखा ।

वन खेतों की पगडंडी से उस बेला बालायें आतीं ,
धरे कमर पर डलिया हँसतीं चंचल अंचल छोर उड़ातीं ।
दौड़ रही थीं होड़ लगाकर कौन अधिक महुआ बीनेगी ,
किसकी आँख बच कर उनमें कौन उन्हें बरबस छीनेगी ।
'चल री सखि, रस-महुआ बीनें'–गाने की ध्वनिपर मँडराकर–

आज भोर महुओं को मैने सूने वन में चूते देखा ।

घनी बिछी ताज़े महुओ की ढेरी लगती कितनी सुन्दर,
रोदन या कि हास हो तरु का कितना मीठा मदिर मनोहर।
मधुराई में डूबा तन मन कितना नशा उँडेल रहा था,
हरे पल्लवों की छाया में कन्दुक-क्रीड़ा खेल रहा था।
मदिरा के रँग भरे कुमकुमे नन्हें नन्हें फेंक फेंक कर—

आज भोर महुओं को मैंने सूने वन में चूते देखा।

जिसकी सुधि में व्यर्थ अश्रुओं को पिघले मोती कह कह कर—
चेतन कवि गर्वित होता है, देखे जड़ व्यापार सफलतर।
क्यों इस तरु को याद किसी की इतना मदिरामय कर डाले,
पी पी उसका अश्रुहास हां मदमाते से पीनेवाले।
एक पहर की क्षुधा निवारण मानो दीन दरिद्रों की कर—

आज भोर महुओ को मैंने सूने वन में चूते देखा।

केवल एक तुम्हीं को जाना।

श्वासों का निर्माल्य चढ़ाया,
वन्दन को यह छन्द रचाया,
भक्त तुम्हारे अगणित होंगे, मैंने तुम्हें देवता माना।

तुम्हें नहीं अवकाश न बोलो,
बने रहो पाषाण न डोलो,
जली जा रही प्राण-आरती, इष्ट इसे आलोक बहाना।

उड़ते पृष्ठों में क्षण क्षण के,
चित्रांकन कर अपने मन के,
मैं तुमको ही देख रही हूँ, मुझको अब क्या है अनजाना।

शाप न मुझको, जग को वर दो,
दर्शन से जग-जीवन भर दो,
विश्व तुम्हीं में, तुम्हीं विश्व में बस इन नयनों ने पहचाना।

केवल एक तुम्हीं को जाना।

हाट सपनो की लुटी यों !

क्यों बहुत संचय किया था,
क्यों न कुछ विनिमय किया था,
उस सलोने पारखी की बाट तुमने ही तकी क्यों ?

फड़फड़ाये पंख तम ने,
चल दिया फिर नीड़ रमने,
रह गया कोई नहीं जब फिर तुम्हीं तब तक रुकीं क्यों ?

लौट पड़तीं, साँझ घिरते,
स्वप्न के दल यों न गिरते,
दूर प्रहरी की मुरझती क्षीण ध्वनि पर तुम टिकीं क्यों ?

जब हुआ आलोक मूर्च्छित,
राह घर की हुई विस्मृत,
सांध्य बेला में सभी उठते तुम्हीं पर बेसुधी क्यों ?

मेघ रोते, भूमि हँसती,
मुँदे पंकज, कुमुद खिलती,
रीति साधारण जगत की भी न तुमसे ही निभी क्यों ?

हाठ सपनों की लुटी यों !

आज मिलीं फिर खोई· आँखें।

रजनी के मरुमय जीवन में,
तारों सी, श्यामल नभ-मन में,
ज्योति-किरण छिटकातीं सुन्दर जाग पड़ीं वे सोई आँखें।

समा गई थीं जो आँखो मे—
चितवन-गति थी मन-पाँखो में—
बहुत दिनो पर आज मिलीं वे हिय के तार पिरोई आँखें।

डोरों से लाली बरसातीं,
उतरीं कोरों से मुसकातीं,
धोतीं गरल, घोलतीं आसव अमी-हलाहल धोई आँखें।

दूरी को अति निकट बनातीं,
मौन किन्तु तूफ़ान उठातीं,
तृष्णा-ज्वाल लगाती आई रस के सिन्धु डुबोई आँखें।

जीवित है इतिहास, बताया,
जाग्रत हैं सन्देश, सुनाया,
सींच प्रणय की बेलि अमर कविता कण बन बन रोई आँखें।

आज मिलीं फिर खोई आँखें।

पूजा को तो फूल नहीं है।

मन्दिर द्वार खड़े युग बीते,
दोनों कर ले रीते रीते,
किन्तु न पग पीछे को मुड़ते, यह तो उनकी भूल नहीं है।

सध न सकेगा अर्चन वन्दन,
खिल न सकेगा हिय का नन्दन,
बन्दी हैं अधिकार, प्राप्त पूजा को भी दो फूल नहीं है।

प्राणों में अंगारे बाक़ी,
श्वासों में फुंकारें बाक़ी,
सह पाओ तो स्वीकृत कर लो; जीवन है यह, धूल नहीं है।

जिनसे कोई करे न समता,
जिनको तीखेपन से ममता,
वे फूलों की हँसी सुरक्षित रखनेवाले शूल यही हैं।

पूजा को तो फूल नहीं है।

मुझे एक मुस्कान पिला दो।

क्रूर दृष्टियों की ही ज्वाला,
सम्बल ले मेरा अँधियाला,
पर्व मरण का मना रहा, दे एक अमर दृग-ज्योति जिला दो।

निर्मम यह घनघोर अमावस,
भर लाई पलको में पावस,
तृषित चातकी की वाणी को एक तृप्त कामना पिला दो।

मूक हुआ वीणा का जीवन,
शेष हुआ संगीत अचेतन,
सीमा के छोरों से बिखरी वह असीम झंकार मिला दो।

स्तब्ध लहर में सोई सी है,
किसी खोज में खोई सी है,
चितवन की चाँदनी पिला कर कुमुदिनि की अनुभूति खिला दो।

मुझे एक मुस्कान पिला दो!

आज कहीं कुछ छोड़ चली मैं।

दूर कहीं पर अक्षय निधियाँ,
आकुल व्याकुल सी गति विधियाँ,
मधुर कल्पना के जीवन के कल्पों से पल छोड़ चली मैं।

बूँदों में विस्तृत नभ खोया,
सत्यों में मृदु सपना गोया,
पागलपन की बेहोशी की अन्तिम श्वासें तोड़ चली मैं।

पार या कि मझधार रहूँ मैं,
आदि इसे या अन्त कहूँ मैं,
पथ की बाधाओं से पग का निज का बन्धन जोड़ चली मैं।

आज कहीं कुछ छोड़ चली मैं।

नाव के इन बन्धनों को खोल, माँझी !

विसुध लहरों का निमन्त्रण आज आया ,
क्या तुम्हें फिर भी नियन्त्रण आज भाया ।
विवश करती दूर की झंकार हमको ,
आज जाना क्षितिज के उस पार हमको ।

मत्त लहरों बीच आज किलोल, माँझी !

चिर दिनों की लाज को भी लाज आई ,
मूर्त्त सुधि भूले क्षणों की आज आई ।
झूम तरुणाई उठी निस्पन्दता पर ,
मचलती झंझा उठी निष्कम्पता पर ।

देर मत कर उठी हिय-हिल्लोल, माँझी !

देख मत किरणें बिदाई ले चलीं क्यो ?
साँझ ने मसि-कालिमा मुख पर मली क्यों ?
देख मत, क्यो नीड़ में खग आ जुटे हैं,
क्यों बड़े नीलम महल मोती लुटे हैं।

आज सरित प्रवाह साहस तोल, माँझी !

पूछ मत, पूनम कि मावस रात काली,
दिशाओं में प्रतिध्वनित आह्वान खाली।
शुभ न होवे लग्न तो दुर्योग क्या है ?
साथ जब हम तुम चले तब योग क्या है ?

एक स्वर से आज तो जय बोल, माँझी !
नाव के इन बन्धनों को खोल, माँझी ?

तुमने भी जाना होगा घर घर दीवाली आई।
अँधियाले पर जगमग पग धर कर उजियाली आई।
तम निःश्वासों पर दीपों के हरसिंगार झरे हैं,
तम को पूनम कर देने को अगणित मणि बिखरे हैं।
बन्दिनी बना मावस को यह कनक-ज्योति बिखरी है।
तम पर स्वर्णिम पिचकारी की धवल धार छहरी है।
'कू' निस्वन कुहू निशा का सुन जग-रसाल तरु ऊपर,
शत शत प्रदीप मंजरियाँ फूटी हैं ज्योति बहा कर।
इस कृष्ण-चँदोवे-नीचे नाची है ज्योति परी सी,
शुभ पर्व मनाने आईं, कामिनियाँ कनक-छरी सी।
हाँ, आज चली आती है श्यामा कृष्णांचल फहरा,
अम्बर पर की नर्त्तकियाँ भू पर नाची हैं लहरा।
नभ-काली घटा उठी है, भू रजत-सरित झलमलझल,
श्यामा के काले दृग-सर में फूल उठे श्वेतोत्पल।
घन-अंजन-तम में डूबा डूबा सा विश्व दिशा पल,
उसको उबार लेने को फैले शत कर स्वर्णोज्ज्वल।
यह तिमिर निहार रहा है निज शत शत नयन पसारे,
ढुल ढुल कर आये जाते वसुधा पर अगणित तारे।

आई हैं दीप - शिखायें दमकातीं अपने कंकण,
कज्जल-पट पर करने को प्रज्वलित रूप का अंकन।
शुभ राग सुहाग भरी-सी मुग्धायें सजतीं दीपक,
घर लौटे प्रिय के हित वे आलोक मार्ग निर्देशक।
निस्तब्ध-अमा-मन्दिर से घन अंजन दूर भगातीं,
हैं दीपक-राग सुनातीं भामिनि, आलोक जगातीं।
नीले नभ की कोरों पर लटकाती हैं बालायें
मुक्ता लड़ियाँ, ग्रीवा में दीपों की मणि-मालायें।
मोती की चौक पुराकर उस तमस्विनी के द्वारे
झुक झूम झुलाये देतीं दीपों की वन्दनवारें।
घनघोर तमिस्र-क्षितिज पर उनकी मनुहारें चंचल,
जगमग जगमग कर मचली पड़ती हैं जल जल उज्ज्वल।
मातायें तमस्विनी का भर अंक दीप-रत्नों से,
आशीष-वचन बिखरातीं खिलते-से ज्योति-कणों से।
मावस-काली कालिन्दी में तिरा दीप-नौकायें,
होते प्रसन्न बालक-गण हँसती हैं ज्योति कलायें।
अपने सुकुमार-करों में शिशु ज्योति-ध्वजायें लेकर,
आगे बढ़, ऊँचा करने आये हैं होड़ लगाकर।
चाँदी की चमचम तम को चाँदनी बनाने आई,
वैभव के जगमग दीपों में खुल मुसकाने आई।
दीनों के दुख सी काली मावस की बाढ़ उछलकर
बाँहों में ले न सकी है धनिकों की पूनम भरकर।
दीपों से नित ही जलते जिनके तन मन धन जीवन,
वह दीना मलिना भी यह शुभ पर्व मनाती इस क्षण।

झंझा-झोंकों से बचने अंचल की ओट छिपाये,
बुझ स्वयं सुभग रखती हैं झिलमिल लघु-ज्योति जगाये।
ऐसे ही गहन अँधेरे में जिनके किसी अशुभ दिन
प्रिय चले गए होंगे वे पद-चिह्न-ज्योति लेतीं गिन।
मावस की राह अँधेरी में कोई पथ-भूली सी,
सुधि-दीपक जला उठी है बन ज्योति-किरण तूली-सी।
मृदु सोंधी-गन्ध-गमकती ले भीगी दीपावलियाँ,
नववधुयें साज उठी हैं वर्त्ती की उज्ज्वल कलियाँ।
हिय-पुलको के फूलों से भर खील फूल से आँचल,
रचती है मावस-शय्या दीपक फूलों-से झलमल।
उनके सपनों की काली आँखों पर मोती चुम्बन
भरते है आकर उनके जीवन के प्रिय संचित धन।
श्वासों में रुँधा अँधेरा जीवन की ज्योति सुलाये,
कण कण संचित स्नेहामृत कर मैंने प्राण जलाये।
मैं अन्धकार-सोपानों पर रही, गये तुम उस दिन.
तब से मै खोज रही हूँ श्वासों से पद के अंकन।
इस पथ का अन्त न दिखता है साथ अमा का डेरा;
लघु प्राण-दीप कम्पित है झंझानिल करती फेरा।
सपनों की अमा भुलाने अंगार घुलाऊँ कब तक?
युग युग से तृषित पलों को यह धूम पिलाऊँ कब तक?
युग युग के गहन-तिमिर में मेरा प्रदीप रोया है,
अब इसका स्नेह चुका है मेरा प्रदीप सोया है।
कब तक रूँधी श्वासों से मन्दिर की सज्जा होगी?
कब तक इस मृत्यु-अँधेरे से जीवन-पूजा होगी?

तुम केवल एक निमिष को प्रिय, कर दो पलकोन्मीलन ,
यह मेरा लघु दीपक मन जाये आलोक-गगन बन ।
संकेत एक तुम कर दो आलोक-तरी पा जाऊँ ,
कर पार अगम तम-सागर प्रिय, तुम तक मैं आ जाऊँ ।
प्राणों में शिखा जगा दो ज्वाला का पर्व मनाऊँ ,
निज रोम रोम में उज्ज्वल दीपावलि अमर रचाऊँ ।